CBSE पुनरावृति नोट्स
CLASS - 8 hindi
पाठ – 9
दो पृष्ठभूमियाँ – भारतीय और अंग्रेज़ी

भारत में अगस्त सन् 1942 में जो कुछ हुआ, वह आकस्मिक नहीं था। वह पहले से जो बहुत कुछ होता आ रहा था उसकी चरम परिणति थी। इसके बारे में आक्षेप, आलोचना और सफ़ाई के रूप में बहुत कुछ लिखा जा चुका है और बहुत सफ़ाई दी जा चुकी है। फिर भी इस लेखन में से असली बात गायब है, क्योंकि इनमें एक ऐसी चीज़ को केवल राजनीतिक पहलू से देखा गया है, जो राजनीति से कहीं अधिक गहरी थी। इन सबके पीछे वह तीव्र भावना बच रही थी कि चाहे कुछ हो जाए यह राज्य अब बर्दाश्त नहीं किया जा सकता।

व्यापक उथल-पुथल और उसका दमन

जनता की ओर से अकस्मात असंगठित प्रदर्शन और विस्फोट, जिनका अंत हिंसात्मक संघर्ष और तोड़-फोड़ में होता था, ज़बरदस्त और शक्तिशाली हथियारबंद सेनाओं के विरुद्ध भी लगातार चलते रहे। इनसे जनता की भावनाओं की तीव्रता का पता लगता है। यह भावना उनके नेताओं की गिरफ़्तारी से पहले भी थी लेकिन इन गिरफ़्तारियों और उसके बाद अक्सर होने वाले गोलीकांड ने जनता के क्रोध को भड़का दिया। वे इतने क्रुद्ध और उत्तेजित थे कि चुप नहीं बैठ सकते थे। ऐसी परिस्थितियों में स्थानीय नेता सामने आए और कुछ समय के लिए उनका अनुसरण किया गया। लेकिन उन्होंने भी जो निर्देश दिए वे काफ़ी नहीं थे। अपने मूल रूप में यह एक सहज जनांदोलन था। पूरे भारत में 1942 ई. में युवा पीढ़ी ने, विशेष रूप से विश्विद्यालयों के विद्यार्थियों ने हिंसक और शांतिपूर्वक दोनों तरह की कार्यवाहियों में बहुत महत्त्वपूर्ण काम किया।

इस तरह 1857 के गदर के बाद, पहली बार, भारत में ब्रिटिश राज के ढाँचे को बलपूर्वक चुनौती देने के लिए (लेकिन यह बल निहत्था था) बहुत बड़ी जनसंख्या उठ खड़ी हुई। यह चुनौती मूर्खतापूर्ण और बेमौके थी क्योंकि दूसरी ओर सुसंगठित हथियारबंद सैनिक शक्ति थी। यह सैनिक शक्ति इतिहास में पहले किसी अवसर की तुलना में कहीं अधिक थी। उस भीड़ ने न तो इस द्वंद्व की तैयारी ही की थी और न ही इसके लिए समय का चुनाव खुद किया था। यह स्थिति उनके सामने अनजाने ही आ गई थी। तात्कालिक प्रतिक्रिया के रूप में, भले ही वह प्रतिक्रिया नासमझी से भरी या गलत रही हो, लेकिन उससे भारत की स्वतंत्रता के लिए उन्होंने अपने प्रेम और विदेशी शासन के विरुद्ध अपनी घृणा को प्रकट किया।

सन् 1942 के दंगों में पुलिस और सेना की गोलीबारी से मारे गए और घायल हुए लोगों की संख्या के अनुमादित सरकारी आँकड़े के अनुसार 1,028 मरें और 3,200 घायल हुए। जनता के अंदाज़ के अनुसार मृतकों की संख्या 25,000 कही जाती हैं, पर यह संख्या भी संभवतः अतिरंजित हैं। शायद 10,000 की संख्या ज़्यादा सही होगी।

यह असाधारण बात थी कि कैसे बहुत से शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में ब्रिटिश शासन खत्म हो गया और उन हिस्सों पर 'दोबारा विजय पाने में' उसे कई दिन और कभी-कभी हफ़्ते लग गए। ऐसा विशेष रूप से बिहार में, बंगाल के मिदनापुर ज़िले में और संयुक्त-प्रांत के दक्षिण-पूर्वी ज़िलों में हुआ। यह बात ध्यान देने की हैं कि संयुक्त-प्रांत के बलिया ज़िले में (जिसे दोबारा जीतना पड़ा था) भीड़ के

खिलाफ़ शारीरिक हिंसा या लोगों की चोट पहुँचाने की कोई गंभीर शिकायत नहीं है।

भारत की बीमारी – अकाल

भारत बहुत बीमार था, तन और मन दोनों से। जबकि लड़ाई में कुछ लोग बहुत फुले-फले थे, दूसरों पर बोझ चरम सीमा तक पहुँच गया था और इसकी भयानक स्मृति दिलाने के लिए अकाल पड़ा, दूर-दूर तक विस्तृत अकाल जिसका प्रभाव बंगाल और पूर्वी तथा दक्षिणी भारत पर पड़ा। ब्रिटिश शासन के पिछले 170 वर्षों में यह सबसे बड़ा और विनाशकारी था। इसकी तुलना 1766 ई. से 1770 ई. के दौरान बंगाल और बिहार के उन भयंकर अकालों से की जा सकती हैं जो ब्रिटिश शासन की स्थापना के आरंभिक परिणाम थे। इसके बाद महामारी फैली, विशेषकर हैज़ा और मलेरिया। वह दूसरे सूबों में भी फैल गई और आज भी हज़ारों की संख्या में लोग उसके शिकार हो रहे हैं।

इस अकाल ने, ऊपर के थोड़े से लोगों की खुशहाली के झीने आवरण के नीचे भारत की जो तसवीर थी, उसे उघाड़ कर रख दिया। यह तसवीर ब्रिटिश शासन की बदहाली और बदसूरती की तस्वीर थी।

जब यह सब घटित हो रहा था और कलकत्ता (कोलकाता) की सड़कों पर लाशें बिछी थीं, कलकत्ता के ऊपरी तबके के दस हज़ार लोगों के सामाजिक जीवन में कोई परिवर्तन नहीं आया था। नाच-गाने और दावतों में बिलासिता का प्रदर्शन हो रहा था और जीवन उल्लास से भरा था।

अक्सर कहा जाता है कि भारत अंतर्विरोधों का देश है। कुछ लोग बहुत धनवान हैं और बहुत से लोग बहुत निर्धन हैं। यहाँ आधुनिकता भी है और मध्ययुगीनता भी। यहाँ शासक हैं और शासित हैं, ब्रिटिश हैं और भारतीय हैं। ये अंतर्विरोध सन् 1943 के उत्तरार्द्ध में अकाल के उन भयंकर दिनों में जैसे कलकत्ता शहर में दिखाई पड़े, वैसे पहले कभी नज़र नहीं आए थे। अकाल की गहरी वजह उस बुनियादी नीति में थी जो भारत को दिनोंदिन गरीब बनाती जा रही थी और जिसके कारण लाखों लोग भुखमरी का जीवन जी रहे थे।

भारत में ब्रिटिश शासन पर बंगाल की भयंकर बर्बादी ने और उड़ीसा, मालाबार एवं दूसरे स्थानों पर पड़ने वाले अकाल के आखिरी फ़ैसला दे दिया। पर जब वे जाएँगे, तो वे क्या छोड़ेंगे-तीन वर्ष पहले मृत्यु-शय्या पर पढ़ें टैगोर के सामने यह चित्र उभरा था-“लेकिन वे कैसा भारत छोड़ेंगे? कितनी नग्न दुर्गति? अंत में उनके सदियों पुराने प्रशासन की धारा सूख जाएगी तो वे अपने पीछे कितनी कीचड़ और कचरा छोड़ेंगे?”

भारत की सजीव सामर्थ्य

अकाल और युद्ध के बावजूद, प्रकृति अपना कायाकल्प करती है और कल के लड़ाई के मैदान को आज फूलों और हरी घास से ढक देती हैं। मनुष्य के पास स्मृति का विलक्षण गुण होता है। वह कहानियों और यादों से निर्मित अतीत में बसता है। यह वर्तमान, इससे पहले कि हमें उसका बोध हो, अतीत में खिसक जाता है। आज, जो बीते हुए कल की संतान है, खुद अपनी जगह अपनी संतान, आने वाले कल को दे जाता है। कमजोर आत्मा वाले समर्पण कर देते हैं और वे हटा दिए जाते हैं, लेकिन बाकी लोग मशाल को आगे ले चलते हैं और आने वाले कल के मार्ग-दर्शकों को सौंप देते हैं।

उपसंहार

भारत की खोज-मैंने क्या खोजा, क्या पाया है? यह कल्पना करना कि मैं उसका परदा हटाकर यह देख सकूँगा कि वह अपने वर्तमान रूप में क्या हैं और उसका लंबा अतीत क्या रहा होगा, मेरी अनधिकार चेष्टा थी। भारत एक भौगोलिक और आर्थिक सत्ता है, उसकी विभिन्नता में सांस्कृतिक एकता है। यह विरुद्धों का एक ऐसा पुंज है जो मज़बूत और अदृश्य सूत्रों से बँधा है। बार-बार आक्रमणों के बावजूद उसकी आत्मा कभी जीती नहीं जा सकी और आज भी जब वह एक अहंकारी विजेता का खिलौना मालूम होता है, वह अपराजेय है। एक युग के बाद दूसरे युग में उसने महान स्त्री-पुरुषों को जन्म दिया है जो पुरानी परंपरा में को लेकर चले हैं और उसे बदलते हुए समय के अनुरूप ढालते भी रहे हैं। उस महान परंपरा में रवींद्रनाथ टैगोर हुए जो आधुनिक युग की प्रकृति और प्रवृत्तियों से सराबोर थे लेकिन उनकी नींव भारत के अतीत में थी।

जवाहरलाल नेहरू

ऐसा लगता है जैसे पुराना जादू अब टूट रहा है और वह (भारत) चारों ओर देखता हुआ वर्तमान के प्रति जागरूक हो रहा है। उसमें परिवर्तन होगा और यह परिवर्तन ज़रूरी है। फिर भी पुराना सम्मोहन बना रहेगा और उसकी जनता के हृदयों को बाँधे रखेगा।

हमें भारत में अतीत और सुदूर की खोज में देश के बाहर नहीं जाना हैं। हमारे अपने पास उसकी बहुतायत है। अगर हम विदेशों में

जाते हैं तो केवल वर्तमान की तलाश में। यह तलाश जरूरी है, क्योंकि उससे अलग रहने का अर्थ हैं पिछड़ापन और क्षय। जीवन अधिक अंतरराष्ट्रीय होता जा रहा है। इस आने वाले अंतरराष्ट्रीयतावाद में हमें अपनी भूमिका निभानी हैं। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए हमें यात्राएँ करनी हैं, औरों से मिलना है, उनसे सीखना है और उन्हें समझना है लेकिन सच्ची अंतरराष्ट्रीयता कोई ऐसी हवाई चीज़ नहीं हैं जिसकी न कोई बुनियाद हो और न लंगरगाह। उसे (अंतरराष्ट्रीयतावाद को) राष्ट्रीय संस्कृतियों से बाहर निकलना हैं और आज वह स्वतंत्रता, समानता और सच्ची अंतरराष्ट्रीयता के आधार पर ही उन्नति कर सकता हैं।

हम किसी मामूली देश के नागरिक नहीं हैं। हमें जन्मभूमि पर, अपने देशवासियों पर, अपनी संस्कृति और परंपराओं पर गर्व हैं। यह गर्व किसी ऐसे रोमांचक अतीत के लिए नहीं होना चाहिए जिससे हम चिपटे रहना चाहते हैं, न ही अपने ढ़ग से भिन्न औरों के ढ़ग को समझने में इससे कोई कठिनाई होनी चाहिए। इसके कारण हमें अपनी कमज़ोरियों और असफ़लताओं को भी कभी नहीं भूलना चाहिए और न ही उनमें छुटकारा पाने की हमारी इच्छा कुंठित होनी चाहिए। इससे पहले कि हम मानवीय सभ्यता और प्रगति की गाड़ी में औरों के साथ अपनी सही जगह ले सकें, हमें अभी बहुत लंबा सफ़र तय करना है और बहुत-सी कमी को पूरा करना है। हमें जल्दी करनी है, क्योंकि हमारे पास समय सीमित हैं और दुनिया की रफ़्तार लगातार तेजी से बढ़ती जा रही है। अतीत में भारत दूसरी संस्कृतियों का स्वागत करके उन्हें आत्मसात कर लेता था। आज इस बात की कहीं अधिक आवश्यकता है, क्योंकि हम भविष्य की उस ‘एक दुनिया’ की तरफ़ बढ़ रहे हैं जहाँ राष्ट्रीय संस्कृतियाँ मानव जाति की अंतरराष्ट्रीय संस्कृति में घुलमिल जाएँगी। हमें जहाँ भी समझदारी, ज्ञान, मित्रता और सहयोग मिलेगा हम वहीं उसकी तलाश करेंगे और हम सामूहिक कामों में सबके साथ सहयोग करेंगे, लेकिन हम दूसरों की कृपा और सहारे के प्रार्थी नहीं हैं। इस तरह हम सच्चे भारतीय और एशियाई होंगे और साथ ही अच्छे अंतरराष्ट्रीयतावादी और में विश्व नागरिक होंगे।